अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २२
फरवरी - २०२२
प्रकाशन - ०२

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

फरवरी 2022

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्यमध्यमाम्

अस्मदाचार्यपर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

फरवरी 2022

तावत्सत्यं जगद्भाति
शुक्तिकारजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म
सर्वाधिष्ठानमद्वयम्।।

(आत्मबोध श्लोक : 7)

जगत् तब तक सत्य प्रतीत होता है, जब तक उसके अधिष्ठान अद्वय स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है। जैसे सीपी में चांदी का भ्रम तब तक ही होता है, जब तक सीपी का ज्ञान नहीं होता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

जन्म-मृत्यु का रहस्य

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः - जिसका भी जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावि है। यह जानते हुए भी मनुष्य मृत्यु से बचना चाहता है। उसके लिए समस्त व्यवस्था बनाते हुए सुरक्षा का वातावरण निर्मित करता है। सुरक्षा हेतु धन उपार्जन करता है, अपने आसपास उंची दिवारों का निर्माण करता है, ज्यादा से ज्यादा वस्तु व व्यक्ति में ममत्व से युक्त होकर मेरेपन का विस्तार करता है। कुछ हद तक सुरक्षित होने के उपरान्त वह सुख की तलाश करता है। उसके लिए भी धनादि का संचय करके कामना की पूर्ति करता है, और उससे क्षणिक सुख भी प्राप्त करता है। सुख की अनुभूति भी उसके अपनी महत्वबुद्धि व संस्कारों के अनुपात्त में

जन्म-मृत्यु का रहस्य

होती है। इतना सब करने के उपरान्त भी न कभी सन्तुष्ट होता है और न कभी भयमुक्त होता है। उनमें मृत्यु का भय बना ही रहता है। क्योंकि मृत्यु को न तो उंची दिवारें रोक पाती है और न ही कोई ओर शक्ति।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः - जिसका भी जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावि है।'

मृत्यु एक अज्ञात सी अनुभूति है। मृत्यु के उपरान्त हम इस जगत, अपने-पराये, अपनी बनाई हुई समस्त व्यवस्था को पूर्णतः त्यागकर, वर्तमान अस्मिता से शून्य होकर यहां से प्रयाण करते है। जैसे पक्षी तिनके तिनके से अपना आशियाना बनाता है किन्तु एक समय उसे छोड़कर नए आशियाने को बनाने के लिए लम्बी उड़ान भरता है। हमने अपने प्रयासों से तिनके तिनके जोड़कर सुख-सुरक्षा की व्यवस्था

जन्म-मृत्यु का रहस्य

बनाई है। वह हमारे लिए उपलब्ध नहीं रहती है, और हम एक अज्ञात की यात्रा पर नीकलते हैं। उसे हम त्यागना चाहते नहीं है, किन्तु सृष्टि की व्यवस्था के अन्तर्गत उसे हमसे मानो छिन लिया जाता है। उस समय हम विवश होते है। यह हमारे लिए असुरक्षा का कारण बनता है। हमें अपनी अस्मिता शून्य होने का अर्थात् अपने अस्तित्वविहीन होने का भय होता है। यह प्रचलित मृत्यु का स्वरूप तथा उसी प्रकार किसी स्थूलशरीर में प्रवेश होना यह जन्म है।

'मृत्यु में अपनी वर्तमान अस्मिता से शून्य होने का भय होता है।'

यदि उस पर विचार किया जाए कि किसके लिए मृत्यु होती है; तो यह दीखता है कि हम जिस परिवेश में यहां थे, उस परिवेश में हम अन्य के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगे। अर्थात् मृत्यु सदैव अन्य की दृष्टि से होती

जन्म-मृत्यु का रहस्य

है। हमें न तो अपने अस्तित्वशून्य होने की अनुभूति होती है और न ही अस्मिताशून्य। शास्त्र बताते हैं कि मृत्युकाल में कुछ समय के लिए हम एक गहरी निद्रातुल्य अवस्था को प्राप्त कर जाते हैं। उसके उपरान्त अपने संस्कार, वासना और कर्म के अनुरूप अन्य शरीर धारण कर लेते हैं अर्थात् प्रचलित जन्म वह है कि जहां हम इस शरीर में प्रवेश करते हैं और उससे तादात्म्य करके एक नई अस्मिता को धारण करते हैं। किन्तु वस्तुत: हमें अपनी पुरानी अस्मिता को छोडने वा नई अस्मिता को धारण करने का कोई संज्ञान नहीं होता है। किसीको भी इस बात का स्मरण नहीं होता है कि हम इस शरीर में प्रवेश किए हैं। जिस शरीर में भी जाते है, वहां उसीसे तादात्म्य करके उससे अपनी अस्मिता धारण करके जीवन जीते है। और इस प्रकार यह यात्रा अनवरत रूप से चलती रहती है। अत: जन्म-मृत्यु

अन्य की दृष्टि से ही होता है। स्वयं को कोई जन्म-मृत्यु की अनुभूति नहीं होती है।

'जीव के बन्धन का हेतु उपहित चेतना की संकुचिता से तादात्म्य है।'

जीव एक उपहित चेतना का नाम है। अज्ञान में रहते हुए वह अस्मिताशून्य होने से किसी न किसी उपाधि के साथ तादात्म्य करके अपनी विशेष अस्मिता अर्थात् उससे अपनी एक विशेष पहचान बनाता है। जिस समय हमने कोई अस्मिता धारण नहीं की है, उस समय भी हम अस्तित्वविहीन नहीं होते हैं। जिस प्रकार गहरी निद्रा में जाते हैं, उस समय हमारा अत्यन्त अभाव व अस्तित्वविहीन नहीं होते हैं। यह ऐसी स्थिति होती है कि जैसे मानों दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब हो रहा था और दर्पण पर पर्दा डाल दिया गया हो, तब प्रतिबिम्बशून्य हम बिम्ब मात्र होते हैं।

जन्म-मृत्यु का रहस्य

वैसे ही मृत्यु व निद्रा में जिस अन्तःकरण उपाधि में चेतनस्वरूप तत्व मैं की तरह भासित हो रहा था, वह तमस् वा अज्ञान से आच्छादित हो जाने से उसमें उपहित चेतना अथवा प्रतिबिम्बित चेतना का अभाव होता है। किन्तु बिम्बस्थानीय मैं जो अनुपहित चेतना है, वह तो तब भी विराजमान है। यही हमारा सत्य है। किन्तु उस विषयक अज्ञान होने से कुछ न कुछ कल्पना करके उपहित चेतना से अपनी अस्मिता प्राप्त कर लेते है। और वहीं आगे शरीर, मन, बुद्धि आदि समस्त उपाधि से संकुचित होकर उसे ही अपना सत्य मानने लगती है। यही हमारी जन्म-मृत्यु की कहानी है।

अज्ञान के उपरान्त हमारे पास दो विकल्प होते है; १. प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करना २. कल्पना कर लेना। कल्पना करना अति सरल लगता है। इसलिए देखादेखी में उस मार्ग को ही अधिकतर अपनाते है। किन्तु

जन्म-मृत्यु का रहस्य

कोई सात्विक अन्त:करण से युक्त वीरला प्रामाणिक ज्ञान की जिज्ञासा से युक्त होकर किसी ज्ञानवान गुरु और शास्त्र की शरण में जाता है और अपने सत्य को जानने को प्ररित होता है। शास्त्र का गुरुमुख से श्रवणादि करके अपने जन्म-मृत्यु से रहित अजन्मा ब्रह्मस्वरूपता को जानकर भयादि रूप संसार से पूर्णत: मुक्त हो जाता है।

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

अज्ञानं कारणं साक्षी
बोधस्तेषां विभासकः।
बोधाभासो बुद्धिगतः
कर्तास्यात्पुण्यपापयोः।।

अज्ञान हमारे इन दो शरीरों का कारण है, साक्षी इनका प्रकाशक है। बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतनता ही पाप-पुण्य फलों का कर्ता जीव है।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्यश्री ने स्थूल और सूक्ष्म शरीर का परिचय दिया। प्रत्येक जीव इन दो शरीरों से युक्त होता है। इनके साथ तादात्म्य करने के उपरान्त अपने आपको जन्मादि विकार से युक्त, रागादि से कलुषित, कामादि विकार से विकृत मान लेते हैं। इस मान्यता के उपरान्त त्रिविध तापयुक्त संसार से संतप्त होना स्वाभाविक और अवश्यंभावि हो जाता है। इन स्थूलादि शरीर से अपनी अस्मिता प्राप्त होना - कार्यरूपा है। कहानी तो उससे भी पूर्व की है अर्थात् उसका कोई न कोई कारण है-जिसकी वजह से हम स्थूलादिशरीर से तादात्म्य करके संकुचित अस्मिता से युक्त हो गए।

लघु वाक्यवृत्ति

उन संकुचिता से मुक्ति के लिए सतत प्रयास करते रहते हैं। किन्तु जब तक इस कारण को नहीं समझेंगे तब तक यह प्रयास सतही और विफल ही रहेंगे। उसके कारण को समझने पर ही उसे पूर्ण शान्त करने का प्रामाणिक तरीका भी समझ में आएगा। वही 'कार्य' को समाप्त करने का हेतु बनता है।

'जीव के संसरण का कारण अपने स्वरूप का अज्ञान है।'

<u>अज्ञानं कारणं</u> - अज्ञान का अभिप्राय ही ज्ञान का अभाव है। सत्य को नही जानना ही मोह का कारण है। उसे 'कारण शरीर' भी कहा जाता है, वह ज्ञान के द्वारा नष्ट होता है। अज्ञान में रहते हुए अस्मिताशून्य होते हैं, अतः कुछ न कुछ कल्पना आश्रय लेकर प्राप्त उपाधियों से तादात्म्य कर उससे अपनी अस्मिता बना लेते हैं। संकुचित अस्मिता से

लघु वाक्यवृत्ति

युक्त होने पर संसरण होना अवश्यंभावि है। यद्यपि अज्ञान कोई स्थूल-सूक्ष्मादि शरीर की तरह दृश्य नहीं होता है। किन्तु अज्ञान की अनुभूति हमें तमस से आच्छादित सुषुप्ति अवस्था में होती है। उससे भी उसके होने का निश्चय किया जा सकता है।

यहां प्रश्न यह होता है कि अज्ञान यदि कारण शरीर है तो हम इन शरीरत्रय को किस प्रकाश में जान रहे है? उस पर आचार्य यहां बताते हैं कि, 'साक्षी बोध: तेषां विभासक: - अर्थात् साक्षी उन सब का प्रकाशक है। साक्षी स्वत: किसी घटना में शामिल हुए बगैर निरपेक्षरूप से, प्रकाशित करता है। साक्षी अत्यन्त

लघु वाक्यवृत्ति

जीवंत होता है, जो पूरे घटनाक्रम को देखता भी है और शामिल भी नही होता है। न किसी को पकड़ने की चेष्टा करता है, न ही त्यागने की। विविध बाल्यादि तथा जाग्रत आदि अवस्था परिवर्तन को, भाव-अभाव को साक्षी के प्रकाश में यथावत जानते है। बाह्य घटनाक्रम, अपने मन के निश्चय, विचार, भावना, प्रेरणा, विकारादि परिवर्तन को उन सब से अप्रभावित रहते हुए प्रकाशित करता है। यह चेतनस्वरूप साक्षी हमसे कहीं पृथक् नहीं किन्तु सब के द्रष्टास्वरूप 'मैं' ही है।

'साक्षी सब से अप्रभावित, असंग रहते हुए समानरूप से प्रकाशित करता है।'

यदि हम साक्षी 'हम' उन सब से अप्रभावित, असंग है तो कर्ता कौन है, यह स्वाभाविक जिज्ञासा का आचार्य यहां समाधान करते हैं।

बुद्धिगतो चिदाभासो कर्ता स्यात्पुण्यपापयो:।

लघु वाक्यवृत्ति

चेतना अन्त:करण में प्रतिबिम्बित होती है। यह चिदाभास में 'मैं हूं' का सामान्य ज्ञान होता है। किन्तु अज्ञान की वजह से अपने सत्य को नहीं जानते हैं। अत: उपाधि से तादात्म्य करके संकुचित अस्मिता प्राप्त कर लेते हैं। परिणाम स्वरूप अपूर्णता की निवृत्ति के स्वाभाविक आकांक्षी होते हैं-अर्थात् भोक्तृत्व जन्म लेता है। उसी धरातल के दृश्य जगत को सत्य मानकर उससे अपूर्णता की निवृत्ति व पूर्णता की प्राप्ति के संकल्प और चेष्टा से युक्त होता है। इस प्रकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतना ही उपाधि के साथ तादात्म्य करके कर्ता-भोक्ता जीव बनती है। उसके उपरान्त उसीका संसरण आरम्भ हो जाता है।

विभूति दर्शन

गीता अध्याय : 12

भक्ति योग

भक्ति योग

गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान ने अपना विश्वरूप दर्शन दीखाया। समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण में ईश्वर का अस्तित्व, उसकी महिमा दीखाई गई। वे ही जगत के कर्ता-धर्ता, सर्वनियन्ता हैं। समस्त देवी-देवता उन्हींसे अभिव्यक्त हुए हैं और उन्हीं में प्रलय को प्राप्त होते है। अर्जुन को न केवल इस विषय का ज्ञान प्रदान किया किन्तु भगवान की कृपा से उसने साक्षात् अनुभव भी किया। जिसे इसका अनुभव नहीं है, वह केवल श्रद्धा से ही स्वीकार करता है। श्रद्धा वह आंखे है, जिसके द्वारा स्वयं नहीं देखने पर भी अन्य की दृष्टि से मानो देख लेते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय से पूर्व श्रद्धा से प्रेरित होकर पक्षी गान करते हैं।

भक्ति योग

अर्जुन ने स्वयं परमात्मा के सर्वव्यापी, जगन्नियन्ता होने का अनुभव किया। इससे उसे एक लक्ष्य मिल गया कि, इस परं सत्य के प्रति ही भक्ति जाग्रत हो और उसके प्रति पूर्ण समर्पण हो जाएं। भक्ति महान के प्रति ऐसा प्रेम व आदर है कि उनके स्मरण में प्रियत्व, दर्शन व सन्निधि में मोद और अन्ततः उनसे एक हो जाने की प्रेरणा होती है। यदि ईश्वर के चरणों में प्रेम जग जाएं तो आगे की यात्रा सुलभ होती है।

ज्ञान और भक्ति एक पक्षी के दो पंख के समान है। मन लगाने पर भावनात्मक सरिता व बुद्धि लगाने पर बौद्धिक स्पष्टता होती है। एवं दोनों परं आवश्यक है। पूर्व के अध्याय में भी ज्ञान+विज्ञान बताया था। जिसमें ज्ञान का अभिप्राय समझ तथा विज्ञान अर्थात् अनुभवजन्य ज्ञान। यह तब ही सम्भव होता है कि जब

भक्ति योग

उसके प्रति अनुराग हो जाए। तब अन्य किसी बाह्य विषयक कामना वा महत्व नहीं रहता है। जब तक जीवन में ईश्वर के प्रति प्रेम व महत्व स्थापित नहीं होता है, तब तक वे प्राप्त नहीं होते है। अर्जुन को लक्ष्य मिल गया कि हमें प्रगाढ़ भक्ति चाहिए।

'भक्ति कोई क्रिया नहीं, किन्तु पूजादि क्रिया भक्तिभाव को जगाने के लिए ईश्वर से जोड़ने की साधना है।'

भक्ति का अर्थ पूजा वा कर्मकाण्ड रूप कोई क्रिया नहीं है। ये सब ईश्वर से जोडने की साधना है। अर्जुन में भगवान के श्रीचरणों में भक्ति की इच्छा है। अतः उस विषयक प्रश्न पूछता है कि एवं सततयुक्ता ये..........

यहां दो प्रकार के लोगों का दृष्टान्त दे रहा है कि एक वह जो रागादि से मुक्त होकर सतत आपसे जुड़ा रहता है। संस्कारों के

भक्ति योग

अधीन जीना बन्द करके उचित का संकल्पपूर्वक आश्रय लिया है। वह ईश्वर के प्रति भक्ति व श्रद्धा से युक्त होकर उनकी सतत आराधना करता है। पहला लक्ष्य ईश्वर के अस्तित्व व उनके नाममात्र के स्मरण से मन प्रफुल्लित हो जाएं। उसके लिए वासना संस्कारादि को हेण्डल किया जाता है। उनके हर कार्य में ईश्वर की स्मृति बनी हुई है। ऐसा एक उपासक, भक्त है। दूसरा जिसने गुरुकृपा से शास्त्र के श्रवणादि से जाना कि ईश्वर सर्वात्मा है, उन्हें अपनी आत्मा की तरह से स्वयंप्रकाश चेतना जाना हैं। उसके लिए अन्तर्मुख होकर, कर्मादि से विरत होकर श्रवणादि रूप साधन का आश्रय लेकर अन्ततः ज्ञान में निष्ठ हो गया है। एवं एक व्यक्त की उपासना करता है तो दूसरा

भक्ति योग

उसके आधारभूत सत्य को जानकर उसमें स्थित हो गया है। यदि हमें भगवद् भक्ति सिद्ध करनी है जो कि कभी उनसे वियोग न हो, तो इन दो विकल्पों में से कौन सा विकल्प श्रेष्ठ है, जिसका हम आश्रय ले?

'कोई भी साधना श्रेष्ठ वा न्यून नहीं होती, अधिकारीभेद से उसका महत्व होता है।'

अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान बताते हैं - मयि आवेश्य मनो ये मां...। जिसका मन हममें पूर्णतया, तीव्र भावना से प्रविष्ट है, वह परंश्रद्धा से युक्त भक्त युक्ततम अर्थात् योगियों में श्रेष्ठ है। उन श्रद्धावान योगी में विश्वासमात्र है, हमारा ज्ञान नहीं है। अज्ञान में रहते हुए मात्र श्रद्धा की लाठी से युक्त है। ते मे युक्ततमा मताः। जब तक ऐसे योग से युक्त नहीं होते है, तब तक ज्ञानकक्ष में प्रवेश सम्भव नहीं होता है। अतः यह परं आवश्यक है।

भक्ति योग

दूसरी और जो अक्षर, शाश्वत, अव्यक्त तत्त्व को सत्संग और गुरुकृपा से जानते हैं। उसे जानने हेतु इन्द्रियां, मन आदि करण को सुसंस्कृत बनाया और ऐसे शुद्ध अन्त:करण से युक्त गुरु के श्रीचरणों में समर्पित होकर इस सर्वव्यापी, सर्वात्मा स्वरूपतत्त्व को आत्मा की तरह जान लिया, वह तो हमें ही प्राप्त कर लेता है। अर्थात् हम और उनमें कोई दूरी वा भेद नहीं रह जाता है। उसके लिए पात्रता बताई कि वे समबुद्धि, इन्द्रियों को अपने वश में किए हुए, अन्तर्मुख होकर शास्त्र श्रवणादि करके अन्ततः हमें ही प्राप्त कर लेता है। हमसे पृथक् उनका अस्तित्व नहीं रह जाता है। किन्तु जो देहात्मबुद्धि से युक्त होकर, रागादि से कलुषित हैं, ऐसे व्यक्ति को इस मार्ग पर चलने में ही अत्यधिक क्लेश का अनुभव होता है। उसे यह ज्ञान लाभान्वित नहीं करता है।

भक्ति योग

जो अपने कर्मों को मुझमें समर्पित करके, हमें ही जीवन में लक्ष्यस्वरूप जानते हुए, अनन्यभाव से हमसे जुड़ा रहता है। उनके जीवन में अन्य सब गौण, महत्वविहीन हो गया है। ऐसे हृदय में हमारे प्रति भक्ति और बुद्धि में हमारे तत्वविषयक ज्ञान से युक्त अनन्ययोगी के हम संसार से उद्धारक होते हैं। अतः अर्जुन! तुम भी अपने मन और बुद्धि को हम ही में लगाओ और हमें ही जीवन के लक्ष्य की तरह स्थापित करो, तो निश्चितरूप से तुम भी हमें ही प्राप्त कर जाओगे।

'अनन्ययोग अर्थात् परमात्मा का जीवन में इतना महत्व स्थापित हो जाएं कि अन्य सब गौण हो जाए।'

यह सुनकर अर्जुन के चेहरे पर सम्भवतः भगवान ने कुछ असमर्थता की प्रतिक्रिया का अनुभव किया, अतः एक सुहृद् व करुणावान गुरु की भूमिका निभाते हुए अर्जुन को तुरन्त

भक्ति योग

ही बताया कि, यदि यह तुम्हें कठिन लगता है तो अभ्यासयोग का आश्रय लो। अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से इसे अवश्य सिद्ध कर लोगे। और यदि यह भी इस समय सरल प्रतीत नहीं लगता है तो तुम अपने कर्मों को हमारे लिए करो। अपने स्वार्थ की चिन्ता को त्यागते हुए, परमात्मा की प्रसन्नता से प्रेरित होकर करो। उससे शनैः शनैः सब रागादि से मुक्त होकर अपने मन बुद्धि को हममें लगाने में समक्ष हो जाओगे।

निस्वार्थ कर्म का आरम्भ कर्मफलासक्ति के त्याग से किया जाता है। किसी फल से प्रेरित होकर कर्म हेतु कृतसंकल्प होते है, किन्तु उसके उपरान्त फल की चिन्ता से मुक्त होकर पूरी उर्जा कर्म के क्रियान्वयन में ही सजगता के साथ होनी चाहिए। उसके लिए ईश्वर के कर्मफलदाता होने की श्रद्धा होना

भक्ति योग

अनिवार्य है। तब ही हम फल से निश्चिंत हो सकते हैं। समग्रता से अपनी उर्जा कर्म में लगाने पर इष्टफल अवश्य प्राप्त होता है। भगवान उसे अपना योग बताते हैं कि कर्मफलासक्ति का त्याग करके तुम कर्म करों। इस प्रकार से करने पर कर्म में प्रेम व आनन्द की अनुभूति होगी, व स्वकेन्द्रिता से मुक्त होते जाओगे।

'ईश्वर के प्रति श्रद्धा और प्रेम ही कर्मयोग के प्राण हैं।'

ईश्वर की कृपा की अनुभूति व संवेदना की वजह से मन में ईश्वर के प्रति भक्ति जगने लगती हैं। जिसके मन में ईश्वर के प्रति भक्ति जग जाती है, वह अपने बारे में निश्चिंत होकर निष्कामभाव से कर्म करने में सक्षम होता है। इस प्रकार अर्जुन! अपनी यात्रा का आरम्भ कर्मफलत्याग से करो। त्याग से ही यात्रा का आरम्भ होता है और

भक्ति योग

अन्ततः जीवभाव के त्याग से ही परं शान्ति की अवस्था में जग जाते हैं। अतः त्याग का जीवन में महत्व स्थापित हो। इस प्रकार ईश्वर के भक्त बनकर जीने का पूरा विज्ञान क्रम से इस अध्याय में बताया।

अन्त में भगवान अपने मुख से अपने भक्त के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि, अद्वेष्टा सर्वभूतानां....। जिसमें सब के प्रति आत्मीयता, करुणा है, किसी के भी प्रति न राग है, न द्वेष है, ऐसा निरभिमानी, अनासक्त, प्रेम से युक्त है, वही मेरा भक्त है। उनका हर कार्य अपने स्वकेन्द्रिता से मुक्त, निष्कामता व प्रेम की अभिव्यक्तिरूप होता है। उनके जीवन में बाह्य शुद्धि के साथ साथ अन्तःशुद्धि अर्थात् मन सुन्दर गुण व संवेदना से युक्त है। ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। ऐसे अनेकों मूल्य बताते हुए अपने भक्त की परिभाषा देते हैं। अन्त में भगवान ऐसे साधक को अपना प्रिय भक्त बताते हैं,

भक्ति योग

कि जो श्रद्धा की लाठी लेकर अपने जीवन को पूर्णत: इस धर्ममय ज्ञान व भक्ति हेतु समर्पित किए हैं। इस प्रकार इस अध्याय में एक साधक की भक्ति तक की यात्रा बताई।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— १५ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

महाराज जनक ने स्वयं की कन्या उर्मिला से लक्ष्मणजी का पाणिग्रहण करवाया। विवाह के पश्चात् अयोध्या में कई वर्ष निर्विघ्न और सानन्द व्यतीत होते हैं। इस बीच भरत और शत्रुघ्न एक लम्बी अवधि के लिए ननिहाल चले जाते हैं। जहां तक श्री लक्ष्मण का सम्बन्ध था, उनकी दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं आया। राघवेन्द्र के चरणों का सान्निध्य ही उनका सब से बड़ा सुख था। वे निरन्तर उनकी सेवा में संलग्न रहे। पर वे अयोध्या के राजकुल के सजग प्रहरी भी थे। उनकी पैनी दृष्टि ने मन्थरा के अन्त:करण के कलुष को देख लिया था। इसलिए वे उसे निरन्तर अनुशासन

श्री लक्ष्मण चरित्र

में रखने का प्रयास करते रहे। मन्थरा स्वभावत: इसके लिए कैकेयी को उलाहना देती थी। पर उसके इन उलाहनों को कैकेयी ने कभी गम्भीरता से नहीं लिया। मन्थरा का नाटकीय स्वभाव कैकेयी के मनोरंजन का साधन बन जाता था। इसलिए राम के राज्याभिषेक के समाचार से विक्षुब्ध मंथरा को देखकर उन्हें यह सोचकर हंसी आ गई थी कि सम्भवत: लक्ष्मण की फटकार के प्रति अपना रोष और दु:ख प्रकट करने के लिए ही मंथरा इस नाटकीय मुद्रा में उनके पास आई है।

किन्तु इस बार मंथरा विजयी रही। श्रीराम को वनवास दिलाने में वह सफल रही। लक्ष्मण के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। पर उनकी व्याकुलता का कारण राजसत्ता छिन जाना नहीं था। वे श्रीराम के स्वभाव से भली भांति परिचित थे। उन्हें यह ज्ञात

श्री लक्ष्मण चरित्र

था कि राज्याभिषेक के समाचार सुनकर प्रभु रंचमात्र भी उत्साहित नहीं हुए थे। अपितु उन्हें यह भी पता था कि भरत के राज्याभिषेक की योजना से वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे। उनमें पिताजी के प्रति किसी कठोर प्रतिक्रिया का उदय भी नहीं हुआ। यह उनके संवेदनशील स्वभाव का ही एक प्रमाण है।

वे महाराज दशरथ की कठिनाई को समझ रहे थे, कि उनकी दृष्टि से वे सत्य के लिए श्रीराम का परित्याग कर रघुवंश की वचननिष्ठ परम्परा का पालन कर रहे थे। स्वयं उनकी निष्ठा भिन्न प्रकार की है, पर इसके लिए वे पिताजी को कोई दोष नहीं देते। उन्हें यह भी ज्ञात था कि प्रभु को वनगमन से रोका नहीं जा सकता। अतः उनकी चिन्ता का एक ही केन्द्रबिन्दु था कि श्रीराम उन्हें साथ ले जाने के लिए प्रस्तुत होंगे या नहीं! उस समय की उनकी

श्री लक्ष्मण चरित्र

व्याकुलता का चित्रण अत्यन्त मार्मिक है। मीन की जल के प्रति प्रीति सुप्रसिद्ध है। वह एक क्षण के लिए भी जल से पृथक नहीं हो सकती। लक्ष्मण की तुलना भी मछली से की गई है। अन्तर इतना ही है कि जहां मछली जल से अलग होते ही छटपटाने लगती है, लक्ष्मणजी की वैसी दशा केवल वियोग की कल्पना मात्र से हो गई थी।

उपदेश सार शिविर
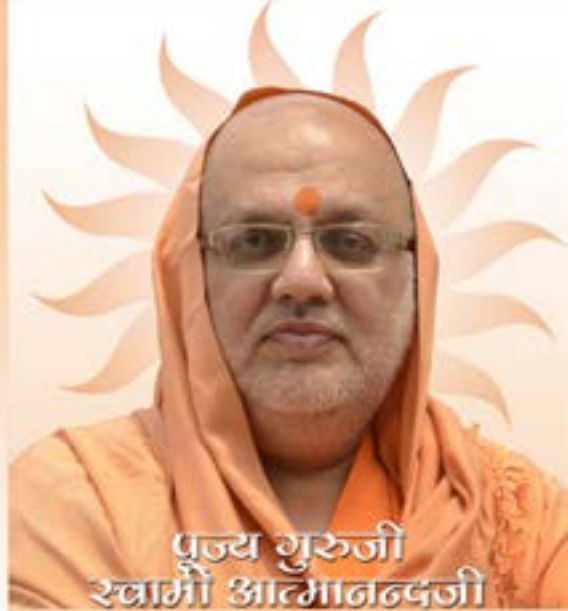
कोविड की स्थिति देखकर
कार्यक्रम में परिवर्तन हो सकता है।

— २० —

उत्तरकाशी
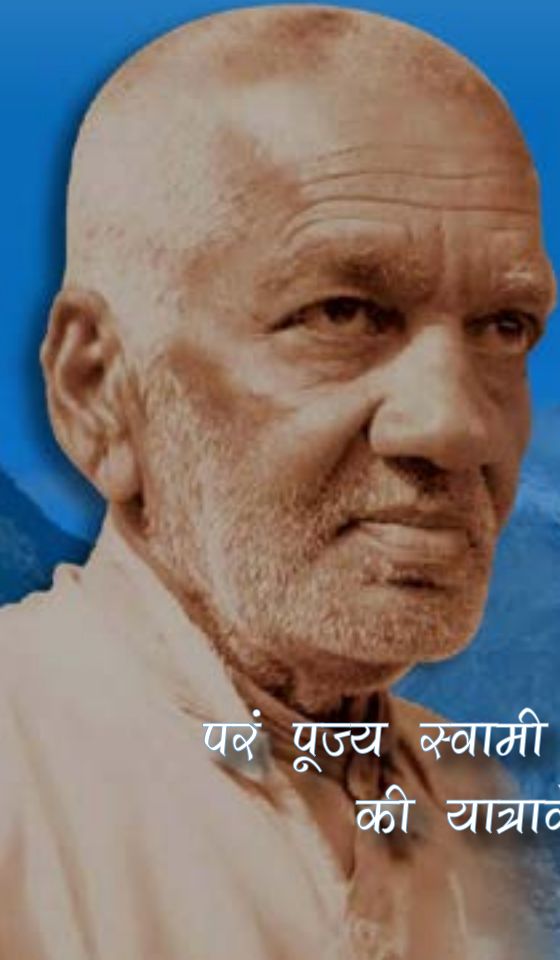
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण
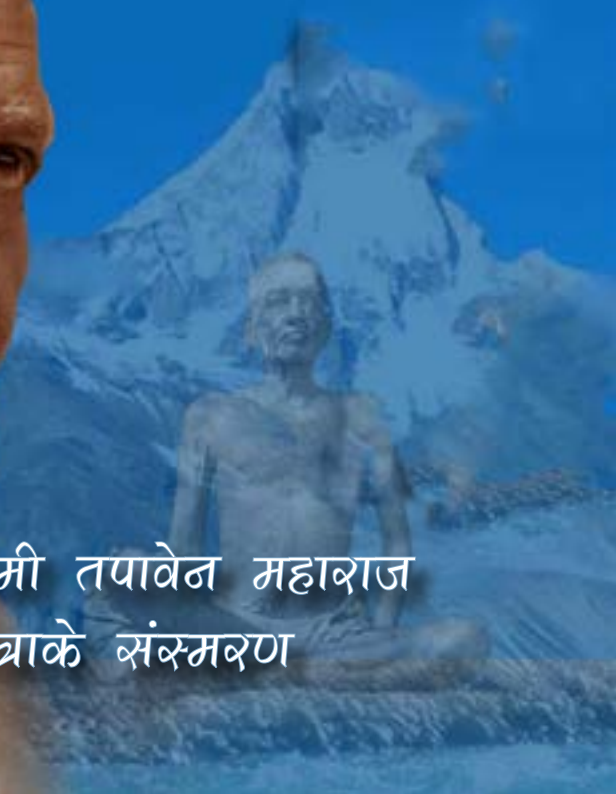
जीवन्मुक्त

यदि आत्मीय उन्नति ही प्राचीन काल के लोगों का लक्ष्य था, तो भौतिक समृद्धि ही नवीन काल के लोगों का लक्ष्य है। वे आत्मा के अनुसंधान में जितना कठिन परिश्रम करते थे, उतना ही ये भौतिक अन्वेषण में करते हैं। उस समय के ऋषियों के पवित्र तपोमय जीवन और इस समय के लोगों के अपवित्र भोगमय जीवन, उनकी आत्मनिष्ठा और इनकी भौतिक निष्ठा आदि पर विचार करके देखें तो इसमें आश्चर्य नहीं है कि ये दोनो काल उत्तर-दक्षिण ध्रुवों की भांति असमान दिखायी देते हैं। किन्तु क्या करें!

जीवन्मुक्त

यह सोचकर शांति पाये बिना और कोई चारा नहीं हैं कि भलाई-बुराई, उन्नति-अवनति और सम्पत्ति-विपत्ति सब स्थिर भाव से नहीं रहते, बल्कि चक्रनेमि-क्रम से परिवर्तित होते रहते हैं। फिर भी, ऋषि-पुंगवों की निवासभूमि हिमालय के एकान्त रमणीय स्थानों में घूमते समय भारतवर्ष की इस कायापलट को याद करके दु:खी हुए और गहरी सांस लिये बिना रहने का साहस इस साधु के मन में नहीं होता था। ऐसा मेरा विचार भी नहीं होता कि मातृभूमि से प्रेम करनेवाले किसी भी विचारशील भारतीय में ऐसा साहस हो सकता हैं।

विभूति दर्शन

पौराणिक गाथा

सुख की परिकल्पना

सुख की परिकल्पना

एक बार भक्त प्रहलाद के पास भगवान विष्णु आएं और उनसे कहा कि, 'प्रिय प्रहलाद! तुमने अपने सब कर्तव्यों को बहुत निष्ठापूर्वक धर्माचरण के साथ सम्पन्न किए हैं। अब तुम्हारा इस पृथ्वी पर से प्रयाण का समय आ गया है। तुम हमारे अत्यन्त प्रिय भक्त हो, इसलिए हम स्वयं तुम्हें वैकुण्ठ ले जाने के लिए आए हैं। यह सुनकर प्रहलाद ने पूछा कि, 'वैकुण्ठ में क्या मिलेगा?' भगवान ने कहा कि, 'वहां तुम्हें सतत हमारी सन्निधि, दर्शनलाभ और सेवालाभ सतत मिलता रहेगा। इसके अलावा अन्य किसी भी प्रकार का कोई सांसारिक कष्ट नहीं होगा।'

यह सुनकर प्रहलाद अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि निष्कण्टक रूप से भगवत् भजन का हमें सौभाग्य प्राप्त होगा। वह पहले तो चलने के लिए तैयार हो गया। किन्तु साथ

सुख की परिकल्पना

ही उन्हें अपनी प्रिय, संतानतुल्य प्रजा का भी स्मरण हुआ। अत: उसने भगवान से कहा कि, 'प्रभु! मैं तो चलने को तैयार हूं किन्तु हमारा एक निवेदन स्वीकार करें तब ही हम आपके साथ चलेंगे।'

भगवान ने कहा, 'बताओ! तुम्हारी क्या इच्छा है? प्रहलाद बोला कि, 'हम अपनी प्रजा का भी हित चाहते हैं, इसलिए हम चाहते हैं कि उन सब को हमारे साथ ले चलिएं। जिससे कि वे सब इन सांसारिक कष्टों से मुक्त हो जाएं और उन सब को वैकुण्ठ के सुख और आपकी सन्निधि का सुअवसर प्राप्त हो।

भगवान ने कहा, 'तुम्हारी इच्छा हमें स्वीकार्य है, किन्तु पहले उन सब से भी तो पूछ लो कि वे चलने को तैयार है या नहीं?' प्रहलाद ने सोचा कि इतना सुअवसर पाकर कौन मना करेगा! यह सोचकर उसने सभी प्रजावासियों को बुलाया और सब को बताया कि वैकुण्ठ से स्वयं प्रभु हम सब को वैकुण्ठ ले जाने के लिए पधारे हैं। हम चाहते हैं कि आप सब को यह सौभाग्य प्राप्त हो। हमारे साथ कौन चलना चाहेगा?

सुख की परिकल्पना

प्रहलाद ने पहले उन वृद्धों को पूछा जो अपने सब कर्तव्यों का निर्वाह कर चूके थे, प्रहलाद को लगा कि अब भरा-पूरा परिवार है, वृद्धावस्था के कष्ट भी होगें, तो वे उन सबसे छूटकारा प्राप्त करके सुख का अनुभव करेंगे। किन्तु उन सब ने मना कर दिया और कहा कि अभी तो हमें पुत्र-पौत्रादि का सुख प्राप्त हो रहा है, उसे भोगना है। और भी जीवन में अनेकों इच्छाएं अधूरी है, उसे भी पूरी करनी है। इसलिए अभी तो हमारे लिए सम्भव नहीं है।

प्रहलाद ने सोचा कि युवावर्ग जो अभी किसी कर्तव्य में बन्धे नहीं है, वे तो चलने को राजी होगें, वैकुण्ठ सुख प्राप्त करके वे धन्य हो जाएंगे। किन्तु उन सब ने कहा कि अभी तो हमें इहलोक के अनेकों भोग भोगने है, मन में अनेकों आशाएं है, उसे पूरी करनी है! इस प्रकार सम्पूर्ण प्रजाजनों ने मना कर दिया। उसी समय प्रहलाद का ध्यान एक वराह परिवार की ओर गया। प्रहलाद ने सोचा कि इन पशु का बिचारे का जीवन ही क्या है? वह निश्चित रूप से इससे मुक्त होना चाहेगा। अत: उन्होंने वैकुण्ठ का पूरा वर्णन करते हुए सूकर को पूछा कि क्या तुम वैकुण्ठ चलना चाहोगे!

सुख की परिकल्पना

सूकर ने कहा कि, 'यदि सूकरी मेरा साथ दे, तो मैं चलने को तैयार हूं।' सूकरी से पूछा तो उसे अपने बच्चों का अत्यधिक मोह था, उसने कहा कि बच्चें साथ में चलने को राजी हो तो मैं चलूंगी! जब बच्चों को पूछा गया तो उन सब ने पूछा कि वहां क्या मिलेगा? वैकुण्ठ का उनके समक्ष पूरा वर्णन किया गया। किन्तु यह सुनकर बच्चों में कोई रुचि नहीं दिखाई पडी। उनके लिए तो गन्दी नाली में रहना यह वैकुण्ठसुख से भी अत्यधिक महान था। इसलिए उन सब ने मना कर दिया। इस प्रकार कोई भी वैकुण्ठ जाने को तैयार नहीं हुआ।

ऐसे ही इस जगत में सब अपने संस्कार व महत्व के अनुरूप सुख की कल्पना करके सुख का अनुभव करता है। अत: हर व्यक्ति की सुख की परिकल्पना भिन्न होती है। उसकी सुख-सफलता का मापदण्ड केवल उसीकी सिद्धि होता है। इसी वजह से सब के लक्ष्य भिन्न होते हैं, सब के जीवन की दिशा उसके संस्कार व महत्व से ही निश्चित होते है।

विभूति दर्शन

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

वेदान्त
आश्रम में

प्रतिष्ठित
देवता

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव पूजन एवं अभिषेक

गीता जयन्ति महोत्सव
अग्रसेन धाम

आश्रम समाचार

श्रीमति रेखा एवं
प्रदीप शर्मा द्वारा

शादी की सालगिरह पर
(२६ जनवरी)

गंगेश्वर महादेव
अभिषेक

आश्रम समाचार

२६ जनवरी

आश्रम समाचार

झण्डा वन्दन

२६ जनवरी / प्रजासत्ताक दिन

आश्रम समाचार

वन्दे मातरम्

२६ जनवरी

आश्रम समाचार

तस्मै श्री गुरवे नमः

स्वामिनी पूर्णानन्द कोविड से ग्रस्त
होने पर आइसोलेशन में...।

ईश्वरकृपा से अब पूर्णत: स्वस्थ।

ईश्वर विभूति दर्शन

आश्रम समाचार

पुरुष एवेदं सर्वम्।

आश्रम समाचार

नमस्तस्मै नमो नमः।

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

उज्जैन में विहग दर्शन

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

प्रेरक कहानियां
(ऑनलाईन)

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

आत्मबोध (ऑनलाईन)

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

पूज्य गुरुजी के द्वारा

---

१ से ६ मार्च २०२२

उपदेश सार शिविर

१ मार्च - महाशिवरात्री उत्सव

२ से ६ मार्च शिविर

पूज्य गुरुजी एवं

आश्रम के अन्य महात्माओं द्वारा

Internet

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Atmabodha Pravachan

- Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

- Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

- Kathopanishad Pravachan

- Shiva Mahimna Pravachan

- Hanuman Chalisa

Internet News

Audio Pravachans

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Feb '22

Vedanta Piyush - Jan'22